REG. NO. RAJHIN /2002/14707

उत्तमा वृत्तिस्तु कृषिकर्मैव

चोखी खेती

नवम्बर, 2025

सर्दियों का अमृत आंवला : आंवला खाने के फायदे

शिफाली[1] एवं डॉ. सीमा त्यागी[2]

आंवला सर्दी में स्वास्थ्य के लिए वरदान है। यह आयुर्वेद में 'आमलकी' कहलाता है और शरीर को ताजगी, इम्यूनिटी, सुंदरता प्रदान करता है। इसके नियमित सेवन से डायबिटीज, त्वचा रोग, बालों के समस्याओं में लाभ होता है और यह उम्र को स्थिर रखता है।

आनंद

आंवला सर्दी के मौसम में लोग बड़े पैमाने पर खाते हैं। आंवला, जो गुणों का खजाना है, जिसे अमृत फल भी कहा जाता है क्योंकि आंवला शरीर को स्वस्थ रखने का काम करता है। ये सेहत और सुंदरता दोनों को बढ़ाने में मदद करता है। इसके अलावा, आंवला आयुर्वेद के हिसाब से भी बहुत फायदेमंद है।

आंवला के आयुर्वेदिक गुण

इस बारे में दर्शन पटेल ने कहा कि आयुर्वेद में आंवला को 'आमलकी' कहा जाता है, जिसका मतलब होता है अमृततुल्य।

आयुर्वेदिक महर्षियों ने आंवला के बारे में कहा कि 'आमलकी व्याय प्रथनाम', यानी आंवला उम्र को कायम रखता है और बुढ़ापे को दूर रखता है। आंवला में एक ऐसा पोषक तत्व होता है जिसे रोजाना खाया जा सकता है। इसका स्वाद मुख्यत खट्टा और कसैला होता है, जिसमें आमल रस प्रमुख रूप से पाया जाता है। हालांकि आंवला का स्वाद खट्टा होता है, फिर भी यह पित्त को बढ़ाने के बजाय शरीर के तीनों दोषों वात, पित्त और कफ को संतुलित करने में सहायक है। इसके अलावा, आंवला का ठंडक प्रभाव गैस और अम्लता की समस्या से परेशान लोगों के लिए बहुत फायदेमंद है।

त्वचा और बालों के लिए फायदेमंद

आंवला में विटामिन सी की प्रचुर मात्रा होती है, जो प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करने के साथ–साथ त्वचा के लिए भी अत्यंत लाभकारी है। आंवला पाउडर का सेवन या उसका प्रयोग विशेष रूप से उन लोगों के लिए उपयोगी है जो मुंहासों की समस्या से परेशान हैं। त्वचा के अलावा, आंवला बालों से जुड़ी परेशानियों जैसे बालों का झड़ना, समय से पहले सफेद होना और डैंड्रफ जैसी समस्याओं में भी असरदार है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि धूप या गर्मी के संपर्क में आने पर भी इसके पोषक तत्व नष्ट नहीं होते। आंवला सूरज की रोशनी या गर्मी से अपने पोषक तत्व नहीं खोता, जिससे यह आंखों की रोशनी बढ़ाने में भी मदद करता है।

1. स्नातकोत्तर विद्यार्थी 2. सहायक आचार्य प्रसार, शिक्षा एवं संचार प्रबंधन विभाग, सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय बीकानेर

डायबिटीज और अन्य रोगों में लाभकारी

दर्शन पटेल के अनुसार, आंवला डायबिटीज को नियंत्रित करने में कारगर है। खासकर प्री–डायबिटिक स्थिति में अगर आंवला, हल्दी और शहद मिलाकर लिया जाए, तो ब्लड शुगर स्तर को संतुलित करने में मदद मिलती है। यह डायबिटीज के साइड इफेक्ट्स जैसे हाथ–पैर जलना, किडनी की समस्याएँ और थकान को भी कम करता है।

आंवला में इम्यूनो मॉड्यूलेटर और एंटीऑक्सीडेंट गुण पाए जाते हैं। यह आयरन, कैल्शियम, फाइबर और विटामिन से भरपूर होता है। आंवला का सेवन जूस, फर्मेंटेड आंवला, च्यवनप्राश, कैंडी, सिरप, माउथवॉश या मुरब्बे के रूप में किया जा सकता है।

कच्चा और सूखा आंवला : दोनों ही वरदान

कच्चा और सूखा दोनों प्रकार का आंवला समान रूप से लाभदायक है।

कच्चा आंवला प्रतिदिन खाने से शरीर में विटामिन सी की पूर्ति होती है, जबकि सूखा आंवला फाइबर और खनिजों का अच्छा स्रोत है।

सूखा आंवला पाचन को बेहतर बनाता है, वजन घटाने में मदद करता है और ब्लड प्रेशर को नियंत्रित करता है।

आंवला में पाए जाने वाले पॉलीफेनोल्स और फ्लैवोनॉयड्स शरीर में कैंसर–रोधी प्रभाव डालते हैं और कोशिकाओं की उम्र बढ़ाते हैं।

सर्दियों में आंवला खाने के अलग–अलग तरीके

1. आंवले की सब्जी

अगर आप रोज के खाने में कुछ नया स्वाद चाहते हैं, तो आंवले की सब्जी एक बेहतरीन विकल्प है। इसे साइड डिश के रूप में रोटी या परांठे के साथ खाया जा सकता है। यह स्वादिष्ट होने के साथ सेहत के लिए भी फायदेमंद है।

2. आंवला जूस

रोजाना सुबह खाली पेट आंवले का जूस पीना स्वास्थ्य के लिए बेहद लाभकारी है। यह डाइजेशन को दुरुस्त रखता है, इम्यूनिटी को बढ़ाता है और त्वचा को निखारता है। साथ ही, बालों को मजबूत और घना बनाता है।

3. आंवले का मुरब्बा

जो लोग मीठा पसंद करते हैं, उनके लिए आंवले का मुरब्बा एक स्वस्थ विकल्प है। यह स्वादिष्ट होने के साथ–साथ पौष्टिक भी है। खाली पेट आंवला मुरब्बा खाने से शरीर को अधिक लाभ मिलता है।

4. आंवले का आचार या चटनी

सर्दियों में आंवले की चटनी या आचार खाने का स्वाद ही कुछ और होता है। यह स्वाद के साथ–साथ शरीर को एंटीऑक्सीडेंट्स भी प्रदान करता है, जो सर्दी–जुकाम और अन्य मौसमी बीमारियों से रक्षा करते हैं।

निष्कर्ष

आंवला सर्दियों में प्रकृति का एक अद्भुत उपहार है। यह फल शरीर को भीतर से मजबूत बनाता है, इम्यूनिटी बढ़ाता है, त्वचा और बालों की सुंदरता बनाए रखता है तथा उम्र बढ़ने की प्रक्रिया को धीमा करता है। नियमित रूप से आंवला को अपनी डाइट में शामिल करना, एक स्वस्थ, ऊर्जावान और दीर्घायु जीवन की दिशा में कदम है। आंवला न केवल सर्दियों का रक्षक है, बल्कि सम्पूर्ण स्वास्थ्य और सौंदर्य का प्रतीक भी है।

कृषि प्रौद्योगिकी : ग्रामीण महिला सशक्तिकरण की नई दिशा

प्रियंका[1] डॉ. सीमा त्यागी[2] और डॉ. प्रसन्नलता आर्य[3]

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ जनसंख्या का लगभग 60 प्रतिशत हिस्सा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। इस कृषि व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। महिलाएँ खेती–बाड़ी, पशुपालन, बीज चयन, फसल संरक्षण, तथा कृषि उत्पादों के विपणन जैसे हर क्षेत्र में सक्रिय हैं। परंतु लंबे समय तक तकनीकी जानकारी, संसाधनों और प्रशिक्षण की कमी के कारण वे कृषि विकास की मुख्यधारा से पीछे रह गईं।

आज जब कृषि क्षेत्र में प्रौद्योगिकी का तेजी से विस्तार हो रहा है, तब यह अवसर महिलाओं के लिए सशक्तिकरण का माध्यम बनकर उभर रहा है।

21वीं सदी में जब विज्ञान और तकनीक ने हर क्षेत्र में क्रांति लाई है, तब कृषि क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रहा। कृषि प्रौद्योगिकी (Agricultural Technology) के प्रयोग ने खेती को पारंपरिक श्रम प्रधान गतिविधि से आधुनिक, दक्ष और ज्ञान आधारित व्यवसाय में बदल दिया है। सौर ऊर्जा, ड्रिप सिंचाई, आधुनिक कृषि यंत्र, जैविक खेती, डिजिटल प्लेटफॉर्म और मोबाइल एप्लिकेशन जैसी तकनीकें अब गाँव–गाँव तक पहुँच रही हैं। इन नवाचारों ने कृषि को न केवल अधिक उत्पादक बनाया है, बल्कि महिलाओं के लिए आत्मनिर्भरता और सम्मान का नया मार्ग भी प्रशस्त किया है।

कृषि प्रौद्योगिकी ने महिलाओं को न केवल खेती के पारंपरिक ढांचे में मजबूती दी है, बल्कि उन्हें नीति निर्माण, बाजार संबंध और नवाचार के क्षेत्र में भी आगे बढ़ने का अवसर दिया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आधुनिक प्रौद्योगिकी ग्रामीण भारत में महिला सशक्तिकरण की सबसे मजबूत नींव बनकर उभरी है – जहाँ "तकनीक" केवल साधन नहीं, बल्कि सशक्तिकरण का सेतु बन चुकी है।

कृषि प्रौद्योगिकी की भूमिका :

कृषि प्रौद्योगिकी ने महिला किसानों के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन लाए हैं। आधुनिक तकनीकों के प्रयोग से न केवल उत्पादन बढ़ा है, बल्कि महिलाओं की कार्यक्षमता और आत्मनिर्भरता में भी वृद्धि हुई है।

मुख्य तकनीकी नवाचार जो महिलाओं को सशक्त बना रहे हैं :

सौर ऊर्जा आधारित तकनीकें – सोलर पंप और सोलर ड्रायर ने महिलाओं को सिंचाई और प्रसंस्करण में आत्मनिर्भर बनाया है।

ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली – कम जल उपयोग से अधिक उत्पादन संभव हुआ, जिससे महिलाएँ जल संरक्षण में अग्रणी बनीं।

डिजिटल प्लेटफॉर्म और मोबाइल एप्स – जैसे "किसान संवाद", "USA Krishi" और "e-NAM" से महिलाएँ बाजार जानकारी, मौसम पूर्वानुमान और प्रशिक्षण प्राप्त कर रही हैं।

कृषि विज्ञान केंद्र (KVKs) – इन केंद्रों के माध्यम से महिलाओं को नई तकनीक, जैविक खेती और मूल्य संवर्धन पर प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

महिला स्वयं सहायता समूह (SHGs) – प्रौद्योगिकी अपनाने के लिए सामूहिक ऋण और विपणन की सुविधा प्रदान करते हैं।

सरकारी योजनाएँ और पहलें

भारत सरकार ने महिला किसानों को सशक्त बनाने हेतु कई

1. स्नातकोत्तर विद्यार्थी 2 व 3 सहायक आचार्य, प्रसार शिक्षा वं संचार प्रबंधन विभाग सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय,
स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

योजनाएँ शुरू की हैं :

महिला किसान सशक्तिकरण परियोजना (Mahila Kisan Sashaktikaran Pariyojana) :

यह परियोजना महिलाओं को तकनीकी ज्ञान, प्रशिक्षण और वित्तीय सहयोग प्रदान करती है।

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM) :

स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिलाओं को आर्थिक और तकनीकी आत्मनिर्भरता की दिशा में प्रेरित करता है।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (PMKSY) :

सूक्ष्म सिंचाई तकनीक अपनाने में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा देती है।

राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (RKVY) :

आधुनिक कृषि प्रथाओं और नवाचार को प्रोत्साहन देने वाली योजना।

निष्कर्ष

कृषि प्रौद्योगिकी केवल उत्पादन बढ़ाने का साधन नहीं, बल्कि महिला सशक्तिकरण का माध्यम भी है। जब महिला किसान तकनीकी रूप से सशक्त होती है, तो वह न केवल अपने परिवार की आर्थिक स्थिति सुधारती है बल्कि समाज और राष्ट्र के विकास में भी योगदान देती है।

इसलिए आवश्यक है कि सरकार, समाज और संस्थान मिलकर महिला किसानों को आधुनिक तकनीक, प्रशिक्षण और संसाधनों तक पहुँच प्रदान करें — ताकि "सशक्त महिला, समृद्ध कृषि" का लक्ष्य साकार हो सके।

पत्रिका में प्रकाशित आलेख / विचार लेखकों के अपने हैं।

मटर के प्रमुख कीट और उनका समन्वित प्रबंधन

डॉ. बी. एस. मिठारवाल[1], डॉ. सुरेंद्र कुमार यादव[2] एवं नरेन्द्र देशवाल[3]

मटर की खेती में कई तरह के कीटों का प्रकोप होता है, जो फसल को भारी नुकसान पहुंचा सकते हैं। इन कीटों का सही समय पर पहचान और उचित प्रबंधन करना आवश्यक है, ताकि फसल की पैदावार और गुणवत्ता को बनाए रखा जा सके। मटर के प्रमुख कीटों के प्रकोप के लक्षण और उनके नियंत्रण इस प्रकार हैं।

1. फली छेदक कीट :

- फली छेदक कीट मटर की फली में छेद करके फसल को भारी नुकसान पहुंचाता है।
- प्रभावित फलियों में छेद दिखाई देते हैं और अंदर के दाने खाली हो जाते हैं।
- ये कीट फलियों में घुसकर अंदर के दानों को खा जाते हैं, जिससे फसल की पैदावार में 30 से 40 प्रतिशत तक कमी आ सकती है।

नियंत्रण :

- गर्मी में गहरी जुताई करें। समय से बुवाई करें। खेत की निगरानी करते रहें। 8 से 10 गंधपाश (फेरोमैन ट्रैप) प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करें। बैसिलस थूरिनजिएन्सिस (बीटी) 1–0 किग्रा प्रति हैक्टेयर की दर से 400 से 500 ली. पानी में घोलकर आवश्यकतानुसार 15 दिन के अन्तराल पर सायंकाल छिड़काव करें।
- नीम के तेल या नीम के अर्क का छिड़काव करने से फली छेदक कीट पर नियंत्रण किया जा सकता है।
- खेतों में उचित साफ सफाई रखें, शुरुआती अवस्था में पौधे पर जहाँ कीट दिखाई दें उन्हें चुनकर नष्ट कर दें।
- ईमामेक्टिन बेंजोएट 5 प्रतिशत एस.जी. दवा का छिड़काव 0–5 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।
- लैम्ब्डा साइहलोथ्रिन 25 प्रतिशत ई.सी. कीटनाशक को 400 एम. एल. प्रति हैक्टेयर की दर से पानी में घोलकर छिड़काव करें।

2. तना मक्खी :

- इस कीट की मैगट तने के अंदर रहकर फसल को नुकसान पहुंचाते हैं, जिससे तना फूल जाता है।
- ज्यादा प्रकोप होने पर पूरा पौधा पीला होकर सूख जाता है।
- संक्रमण ज्यादा होने पर पौधों मर जाता है।
- पौधों का विकास रुक जाता है।

नियंत्रण :

- फसल चक्र अपनाएं।
- स्टेम फलाई प्रतिरोधी मटर की किस्मों का उपयोग करें।
- गर्मी में गहरी जुताई करें। सही समय पर मटर की बुवाई करें। खेत की निगरानी करते रहें।
- खेत की नियमित निगरानी करें और संक्रमित हिस्से को नष्ट कर दें।
- एक एकड़ खेत में 8 से 10 गंधपाश (फेरोमैन ट्रैप) लगाएं, इससे नर कीट आकर्षित होकर इसमें फसकर मर जाते हैं।
- डाइमेथोएट 30 प्रतिशतः ई–सी– 1 ली. प्रति हैक्टेयर की दर से 500 से 600 ली. पानी में घोलकर छिड़काव करें।
- एजाडिरैक्टिन (नीम आयल) 0–15 प्रतिशत ई–सी– 2–5 ली. प्रति हैक्टेयर की दर से 500 से 600 ली. पानी में घोलकर छिड़काव करें।
- लैम्ब्डा साइहलोथ्रिन 25 : ई–सी– कीटनाशक को 400 एम.

1 व 2 सहायक आचार्य, कीट विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर एवं
3 विद्या वाचस्पति छात्र, आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन, कृषि महाविद्यालय, श्रीगंगानगर

एल. प्रति हैक्टेयर की दर से पानी में घोलकर छिड़काव करें।

3. माहू / चेपा / अल :

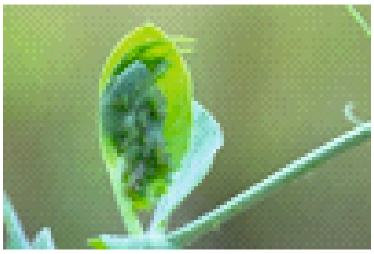

- मटर की फसल में माहू कीट का प्रकोप गंभीर रूप से नुकसान पहुंचा सकता है।
- ये कीट पौधों के कोमल हिस्सों से रस चूसकर उन्हें कमजोर कर देते हैं।
- पत्तियों पर काले–काले धब्बे बन जाते हैं, जिससे पौधों की वृद्धि रुक जाती है।
- रस चूसने के कारण पत्तियों का रंग पीला हो जाता है, जिससे पौधा कमजोर हो जाता है।
- मटर की फलियां काली पड़ने लगती हैं, जिससे फसल की गुणवत्ता पर असर पड़ता है।
- माहू के अधिक प्रकोप से पौधों में फफूंद रोग और मोजेक रोग लगने का खतरा बढ़ जाता है।

नियंत्रण :

- माहू से प्रभावित पौधों के हिस्सों को काटकर तुरंत नष्ट कर दें, ताकि संक्रमण न फैले।
- नीम का तेल 500 से 600 मिलीलीटर 200 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ की दर से मटर की फसल पर छिड़काव करें जिससे कीट की रोकथाम की जा सके।
- इमिडाक्लोप्रिड 17–8 प्रतिशत मिली कीटनाशक को 0–3 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से घोलकर छिड़काव करें।
- थायमिथोक्जाम 25 प्रतिशत डब्ल्यू– जी– को 0–5 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोलकर छिड़काव करें।
- एसिटामिप्रिड 20 प्रतिशत एस–पी– कीटनाशक को 40 ग्राम प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करना चाहिए।

4. मटर में पत्ती सुरंग कीट :

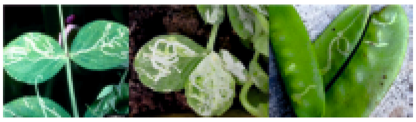

- यह कीट मटर के पौधों की पत्तियों में टेढ़ी–मेढ़ी सुरंग बनाकर हरे भागों को खा जाता है, जिससे पत्तियां सफेद हो जाती हैं।
- प्रभावित पत्तियां पीली या भूरी रंग की हो जाती हैं और आखिर में मर जाती हैं।
- पौधों की बढ़वार की अवस्था में इस कीट का प्रकोप सबसे ज्यादा नुकसान करता है।
- संक्रमण के कारण पौधे की वृद्धि रुक सकती है और उपज में कमी आ सकती है।

नियंत्रण :

- फसल चक्र अपनाएं।
- मटर की कीट प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग करें।
- मटर के पौधे पर पत्ती सुरंग कीट को नियंत्रित करने के लिए गर्मी में खेतों की अच्छी गहरी जुताई करें और सही समय पर मटर की बुवाई करें।
- इमिडाक्लोप्रिड 17–8 प्रतिशत मिली कीटनाशक को 0–3 मि. ली. प्रति लीटर पानी की दर से घोलकर छिड़काव करें।
- सायंट्रानिलिप्रोल 10–26 : (एफएमसी बेनेविया) दवा को 240 मिली प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें।
- डेल्टामेथ्रिन 2–8 : ईसी 400 मि. ली. प्रति हैक्टेयर की दर से पानी में घोलकर छिड़काव करें।

वैज्ञानिक विधि से व्यावसायिक मुर्गी पालन

कैलाश रानी[1], जी वी संगरिया[2] एवं उपेन्द्र कुमार[3]

अंडे या मांस के लिए विभिन्न घरेलु पक्षियों जैसे मुर्गा, टर्की, ईमू, बत्तख, गीज आदि को पालने की विधि को मुर्गी पालन कहा जाता है। यह भारत में इतने लंबे समय से प्रचलित है कि अब यह खेती और कृषि प्रणाली का एक अनिवार्य हिस्सा बन गया है। 1950 के दशक से भारत में पोल्ट्री फार्मिंग में जबरदस्त बदलाव आया है। पहले यह एक असंगठित और गैर–वैज्ञानिक प्रणाली थी। परन्तु समय के साथ यह अधिक व्यवस्थित, नियोजित, वैज्ञानिक, वाणिज्यिक और संगठित कृषि पद्धति में बदल गया है। ग्रामीण पोल्ट्री क्षेत्र भी भारतीय पोल्ट्री उद्योग में महत्वपूर्ण योगदान देता है। इसे विश्वसनीय आर्थिक और पोषण स्रोत के रूप में देखा जाता है।

मुर्गी पालन

सामान्यतया मुर्गी के छोटे बच्चों को स्थानीय स्तर पर ही एक फार्म हाउस बनाकर पालन किया जाता है और बड़े होने पर मांग के अनुसार उनके अंडे या फिर मांस को बेचा जाता है। हालांकि भारत में अभी भी मांस की मांग इतनी अधिक नहीं है परंतु पश्चिमी सभ्यताओं के देशों में पिछली पांच सालों से भारतीय मुर्गी के मांस की मांग काफी ज्यादा बढ़ी है। मुर्गी फार्म एक ऐसा व्यवसाय है जिसको हम कम पूंजी, कम समय, कम परिश्रम और कम जगह में भी शुरू कर सकते हैं ये व्यवसाय ग्रामीण इलाकों में अधिक प्रचलित है।

मुर्गी पालन के लाभ

- कम पूंजी में एक अधिक मुनाफे वाला व्यवसाय ।
- किसी प्रकार के विशेष कोर्स की आवश्यकता नहीं ।
- बाजार में मांस और अंडे की अधिक मांग ।
- कम जगह से शुरुआत कर सकते हैं।
- कम समय में अधिक फायदा शुरू।
- अधिक रखरखाव और मरम्मत की आवश्यकता नहीं ।
- पोल्ट्री फार्म लाइसेंस की जरूरत नहीं रहती है फिर भी आप करवा सकते हैं।
- कृषि से जुड़ा व्यवसाय है इसलिए किसान बनने के कारण टैक्स नहीं लगता है।
- पुरे विश्व में इनकी मांग रहती है।

मुर्गी पालन की शुरुआत कैसे करें

मुर्गी पालन की शुरुआत करना एक बहुत ही आसान काम है परंतु इसे एक बड़े व्यवसायीक स्तर पर ले जाने के लिए वैज्ञानिक विधि के तहत मुर्गी पालन की शुरुआत करनी चाहिए। जिससे मांस और अंडों की उत्पादकता अधिकतम हो सके। मुर्गी पालन की शुरुआत अपने गांव या शहर से थोड़ी दूरी पर करना चाहिए। ताकि मुर्गियों पर प्रदूषण का असर न हो। मुर्गी पालन के लिए ऐसी जगह चुनें जहां साफ पानी, हवा–धूप और वाहनों के आने–जाने का अच्छा इंतजाम हो। अगर आप शेड बनाना चाहते हैं तो जगह साफ–सुथरी और खुली होनी चाहिए। जगह खुली हो और सुरक्षित भी होनी जरूरी है ताकि मुर्गियों को हवा मिलती रहे और किसी बीमारी का खतरा भी न हो। मुर्गियों के लिए आवास और बिछावन की व्यवस्था

आवास व्यवस्था

फार्म में तीन प्रकार के आवास प्रयोग किए जा सकते हैं। ब्रूडर्स– चूजों को जन्म से 8 सप्ताह तक रखते हैं। पालनगृह– ग्रोअर्स को 8 से 18 सप्ताह तक रखते हैं।

लेयर गृह– अंडे देने वाली मुर्गियों को रखा जाता है। बिछावन व्यवस्था

बिछावन के रूप में सूखा, मुलायम, धूल रहित, फफूंद रहित, नई लकड़ी का बुरादा, पुआल, धान भूसी उपयोग करें। बिछावन की मोटाई 10 सेमी रखें। वर्षा ऋतु से पहले बिछावन में 1 किलोग्राम चूना डालें । अमोनिया जैसी गंध आने पर 500 ग्राम सुपर

1. सहायक आचार्य, स्वामी केशवानन्द महाविद्यालय 2 एवं 3. सहायक आचार्य, पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन कृषि महाविद्याालय हनुमानगढ़

फॉस्फेट प्रति 15 वर्गफीट बिछावन में मिलाएं। मुर्गी के लिए उपयुक्त तापमान 60 से 75 फॉरेनहाइट तक होता है। फर्श पक्का, बाहर की जमीन से 30 सेमी. ऊंची होनी चाहिए। प्रति मुर्गी के लिए 2 और भारी नस्ल की मुर्गी के लिए 3 वर्गफीट स्थान की जरूरत होती है।

जगह का चुनाव

किसान भाइयों को जगह को चुनते समय ध्यान रखना होगा कि यह शहर से थोड़ी दूरी पर हो और शांत वातावरण होने के अलावा प्रदूषण भी काफी कम होना चाहिए। इसके अलावा बाजार से फार्म की दूरी भी ज्यादा नहीं होनी चाहिए। यदि आपका घर गांव के इलाके में है। तो वहां पर भी मुर्गी पालन की अच्छी शुरुआत की जा सकती है। मुर्गियों के प्रकार

मुर्गियाँ तीन प्रकार की होती हैं जिसमें लेयर मुर्गी, ब्रायलर मुर्गी, देसी मुर्गी शामिल हैं।

1. लेयर मुर्गी

आमतौर पर लेयर मुर्गी का इस्तेमाल अंडे देने के लिए किया जाता है 4 से 5 माह के बाद यह अंडे देना प्रारंभ कर देती हैं इसके बाद यह 1 साल तक अंडे देती रहती है इनकी कुल उम्र 16 माह तक रहती है इसके बाद इन्हें मांस के लिए बेच दिया जाता है यदि इस प्रजाति के एक मुर्गी की बात करें तो वह एक साल में लगभग 240 से 250 अंडे देती है।

2. ब्रायलर मुर्गी

इनका इस्तेमाल महज मांस के लिए ही किया जाता है इनके अंदर अन्य मुर्गियों की तुलना में तेजी से बढ़ने की क्षमता होती है यह लगभग 6 से 7 सप्ताह में ही पूरी तरीके से बेचने के लिए तैयार हो जाती है। इसके अलावा इनका वजन भी अधिक होता है जिससे कि इनसे अधिक मांस प्राप्त किया जा सकता है। कम समय में अधिक वजन बढ़ने की वजह से किसान भाइयों को कम खर्चा और अधिक मुनाफा प्राप्त हो पाता है।

3. देसी मुर्गी

देसी मुर्गी का इस्तेमाल मांस और अंडे दोनों के लिए किया जाता है इसलिए अधिकतर पोल्ट्री फार्म वाले देसी मुर्गी के कारोबार को ही ज्यादा तरजीह देते हैं।

उपयोगिता के आधार पर मुर्गियों की नस्लें

- अंडा उत्पादन– लेगहार्न, मिनोर्का
- मांस उत्पादन– कोचीन, सुसेक्स औप्रिंगटन, कार्निस, न्यू हैम्पशायर आदि ।
- द्विकाजी नस्लें– रोड आयरलैंड, प्लाईमाउथ रॉक, रेड आस्ट्रोलार्म आदि ।
- मनोरंजक नस्लें– असील (इस मुर्गी का उपयोग मुख्यतः लड़ाई हेतु किया जाता है

कैसे बनाएं एक अच्छा मुर्गी फार्म

किसी भी प्रकार के मुर्गी फार्म को बनाने से पहले किसान भाइयों को अपने आसपास में ही सुचारू रूप से संचालित हो रहे दूसरे मुर्गी फार्म की जानकारी जरूर लेनी चाहिए। इसके अलावा भी एक मुर्गी फार्म बनाते समय आपको कुछ बातों का ध्यान रखना होगा जैसे कि :–

अपने मुर्गी फार्म को पूरी तरीके से हवादार रखें, साथ ही उसे ऊपर से अच्छी तरीके से ढका जाना चाहिए। जिससे कि बारिश और सूरज की गर्मी से होने वाली मुर्गियों की मौत को काफी कम किया जा सकता है।

इसके अलावा कई जानवर जैसे कि कुत्ते, बिल्ली और सांप इत्यादि से बचाने के लिए सुरक्षा की भी उचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

मुर्गियों को दाना डालने के लिए कई प्रकार के डिजाइनर फीडर बाजार में उपलब्ध है। परंतु आपको एक साधारण जार को ज्यादा प्राथमिकता देनी चाहिए। डिजाइनर फीडर देखने में तो अच्छे लगते हैं लेकिन उनमें चूजों के द्वारा अच्छे से खाना नहीं खाया जाता है।

मुर्गियों को नीचे बैठने के दौरान एक अच्छा धरातल उपलब्ध करवाना होगा जिसे समय–समय पर साफ करते रहने होगा ।

यदि आप अंडे देने वाली मुर्गीयों का पालन करते हैं तो उनके लिए बाजार से ही तैयार अलग–अलग प्रकार के घोसले इस्तेमाल में ले सकते हैं।

रात के समय मुर्गियों को दाना डालने के दौरान इलेक्ट्रिसिटी

की पर्याप्त व्यवस्था करनी होगी।

आधुनिक मुर्गी फार्म में इस्तेमाल में होने वाले हीटिंग सिस्टम का भी पूरा ख्याल रखना चाहिए। क्योंकि सर्दियों के दौरान ब्रायलर मुर्गों में सांस लेने की तकलीफ होने की वजह से उनकी मौत भी हो सकती है।

अलग–अलग उम्र के चूजों को अलग–अलग क्षेत्र में बांटकर दाना डालना चाहिए। नहीं तो बड़े चूजों के साथ रहने के दौरान छोटे चूजों को सही से पोषण नहीं मिल पाता है।

चूजों को पालना

मुर्गी के छोटे छोटे बच्चों को चूजे कहते हैं चूजे दो प्रकार से पैदा किये जाते हैं.

1. प्राकृतिक विधि

प्राकृतिक तरीके में मुर्गी प्राकृतिक ढंग से अपने चूजों को पालती है मुर्गी के अंडों से चूजे तैयार करने की एक अलग ही विधि हैं। मुर्गी के 10–12 अंडों को कुडक मुर्गी के बैठने की जगह नीचे रख देते हैं मुर्गी के इन अंडों को अपने पंख फैलाकर ढककर इन पर बैठती हैं अंडों को मुर्गी के शरीर की गर्मी मिलती हैं इससे अंडों में चुजें तैयार होने लगते है इस प्रक्रिया को अंडे सेना कहते हैं। करीब 20 दिनों तक अंडों को मुर्गी सेती हैं। तत्पश्चात अंडों से छोटे छोटे चूजे बाहर निकल आते हैं। चूजों पर भी जब मुर्गी बैठती है। तो ये धीरे धीरे बड़े होने लगते हैं। इस प्रकार मुर्गी अंडे व चूजे दोनों का पालन पोषण करती हैं।

2. कृत्रिम विधि

कृत्रिम पालन पोषण का मतलब चूजों को बिना मुर्गी की सहायता के लिए अंडों से चूजे तैयार करना एवं उनका पालन पोषण करना हैं। कृत्रिम पोषण के लिए पोषक गृह बनाये जाते हैं। पोषक गृहों को चूजों की संख्या के आधार पर छोटा, बड़ा या सुरक्षित बनाना होता हैं पोषक गृहों में चूजे ठंडी, गर्म व बैटरी दड़बा विधि से किये जाते हैं बड़े पैमाने पर पालन पोषण के लिए कृत्रिम विधि ही प्रयोग में लायी जाती हैं चूजों के पोषण में उन्हें गर्म रखना, आराम देना तथा संतुलित भोजन देना आवश्यक होता हैं।

मुर्गियों के लिए दाने का चुनाव

मुर्गी पालन में होने वाले कुल खर्चे में लगभग 60 प्रतिशत खर्चा मुर्गियों के पोषण पर ही किया जाता है भारतीय मुर्गी पालकों के द्वारा 'गोदरेज' और 'सुगुना' कंपनी के दानों को अधिक पसंद किया जाता है। व्यावसायिक मुर्गी पालन में अच्छे परिणाम के लिए चारा और चारे का कुशल का प्रबंधन बेहद जरूरी है। यहां यह ध्यान देना बेहद जरूरी हो जाता है कि जो चारा हम मुहैया करा रहे हैं उसमे सभी जरूरी पोषक तत्व यानी कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, मिनरल्स और विटामिन्स भी शामिल हों। नियमित पोषक तत्वों के अलावा अलग से कुछ और बेहतर पोषक तत्व देने की जरूरत है जिससे खाना ठीक से पच सके और साथ ही उनका जल्दी से विकास हो सके।

मुर्गियों में होने वाली बीमारियां

मुर्गी पालन के दौरान किसान भाइयों को को मुर्गी में होने वाली बीमारियों से पूरी तरीके से बचाव करना होगा अन्यथा कई बार टाइफाइड जैसी बीमारी होने पर आपके मुर्गी फार्म में उपलब्ध सभी मुर्गियों की मौत हो सकती है।

1. बर्ड फ्लू
2. रानीखेत रोग
3. फाउल पॉक्स
4. मैरेक्स
5. फाउल टाइफाइड

मुर्गियों में टीकाकरण

लेयर मुर्गियों के टीकाकरण

मुर्गी की उम्र	रोग	टीकाकरण का तरीका
1 दिन	मैरेक्स	त्वचा में
7 दिन	रानीखेत	आंख और नाक से
14 दिन	गम्बोरो	पीने के पानी में
21–25 दिन	ब्रोंकाइटिस	आंख और नाक से
28 दिन	रानीखेत	पीने के पानी में
6 हफ्ते	फाउल पॉक्स	विंग वेब में
10 हफ्ते	रानीखेत	त्वचा में
12 हफ्ते	गम्बोरो	पीने के पानी में
13 हफ्ते	ब्रोंकाइटिस	पीने के पानी में
19 हफ्ते	रानीखेत, गम्बोरो, ब्रोंकाइटिस	मांस में

ब्रॉयलर मुर्गियों का टीकाकरण

मुर्गी की उम्र	रोग	टीकाकरण का तरीका
1 दिन	मैरेक्स	त्वचा में
7 दिन	रानीखेत	आंख और नाक से
14 दिन	गम्बोरो	पीने के पानी में
28 दिन	गम्बोरो	पीने के पानी में

इस प्रकार मुर्गीपालक आधुनिक, वैज्ञानिक जानकारी के साथ मुर्गीपालन करके कम लागत एवं कम जगह पर अधिक लाभ कमा सकते हैं।

कृषि में लवणीय जल का उपयोग एवं प्रबन्धन

सरोज[1], कमल गुर्जर[2], डॉ. भूपेन्द्र सिंह[3] एवं बी.एल.मीना[4]

राजस्थान भारत का सबसे बड़ा राज्य है, परंतु यहाँ की सबसे बड़ी समस्या जल की कमी है। मरुस्थलीय क्षेत्र, कम वर्षा और भूजल पर अत्यधिक निर्भरता के कारण राजस्थान में जल का स्तर लगातार नीचे जा रहा है। क्षेत्रों में सिंचाई के लिये उचित मात्रा में पानी ना मिल पाने के कारण कृषि उत्पादन सीमित हो जाता है इसके साथ ही राज्य के कई हिस्सों में भूजल का लवणीकरण एक गंभीर समस्या बन गई है। लवणीय जल न केवल पेयजल की गुणवत्ता को प्रभावित करता है, बल्कि कृषि, पशुपालन और मानव स्वास्थ्य पर भी गहरा असर डालता है। लापरवाही से खारे पानी की सिंचाई करते रहने से मिट्टी में नमक और क्षार बढ़ जाते हैं और इससे बीजों के अंकुरण एवं उपज पर कुप्रभाव पड़ता है।

राजस्थान में लवणीय जल की समस्या के कारण

1. भूजल का अत्यधिक दोहन– सिंचाई, घरेलू और औद्योगिक उपयोग के लिए भूमिगत जल का अत्यधिक उपयोग करने से जल स्तर नीचे गया और उसमें नमक की मात्रा बढ़ी।

2. कम वर्षा और सूखा– राजस्थान में औसत वार्षिक वर्षा मात्र 400–450 मिमी के आसपास है। कम वर्षा के कारण ताजे जल का पुनर्भरण नहीं हो पाता।

3.समुद्री प्रभाव और भूगर्भीय संरचना– पश्चिमी राजस्थान के कुछ भागों में प्राचीन समुद्री अवसादों के कारण मिट्टी में नमक प्राकृतिक रूप से उपस्थित है।

4. नालों और टैंकों की सफाई का अभाव– जल निकासी प्रणाली सही न होने से लवणीयता और जलभराव बढ़ जाता है।

5. नहर सिंचाई से द्वितीयक लवणीकरण– इंदिरा गांधी नहर (IGNP) से सिंचाई के कारण कुछ क्षेत्रों में जलभराव हुआ, जिससे मिट्टी में लवणता बढ़ी।

लवणीय जल के दुष्परिणाम :

1. कृषि उत्पादन में गिरावट–मिट्टी की लवणता बढ़ने से फसलों की उपज कम होती है, विशेषकर गेहूँ, चना, मूंग और सरसों जैसी फसलों में। लवणीय जल के कारण कृषि उत्पादन में गिरावट एक गंभीर समस्या है, जो मिट्टी की गुणवत्ता, पौधों की वृद्धि और जल संसाधनों कृ तीनों पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। प्रमुख कारण और प्रभाव निम्न प्रकार है –

लवणीय जल के कारण कृषि उत्पादन में गिरावट के मुख्य कारण

मिट्टी की लवणता बढ़ना– जब सिंचाई के लिए लवणीय जल का उपयोग किया जाता है, तो पानी के वाष्पीकरण के बाद नमक मिट्टी में जमा हो जाता है। इससे मिट्टी की उर्वरता घट जाती है और पौधों की जड़ें पोषक तत्व ठीक से नहीं ले पातीं। मिट्टी में लवणों का इकट्ठा होना मिट्टी के प्रकार पर निर्भर करता है। दोमट बलुई और बालू मिट्टी में विधुत चालकता 4से 6 डेसी सीमनस् प्रति मीटर वाले पानी से भी सिंचाई की जा सकती है पर यदि मिट्टी काली हो जिसमें क्ले की मात्रा अधिक हो और कणों का आकार बहुत छोटा हो उसमें 2 डेसी सीमनस् से अधिक विधुत चालकता वाले पानी से सिंचाई करने पर लवणों की समस्या पैदा हो जाती है।

पौधों में जल अवशोषण की समस्या–मिट्टी में नमक की मात्रा बढ़ने से पौधों के लिए जल अवशोषण कठिन हो जाता है। पौधे "जल तनाव" का सामना करते हैं, जिससे उनकी

1. शोधार्थी , स्नातकोतर एवं 2. विद्यावाचस्पति मृदा विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय बीकानेर, 3 प्रधान वैज्ञानिक , अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना–लवणीय जल का प्रबंधन एवं कृषि में सम्बंधित लवणीकरण, कृषि अनुसंधान केन्द्र बीकानेर, स्वामी केशवानन्द राज. कृषि विश्वविद्यालय , बीकानेर 4 प्रधान वैज्ञानिक , अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना इकाई –लवणीय जल का प्रबंधन एवं कृषि में सम्बंधित लवणीकरण,केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान करनाल (हरियाणा)

वृद्धि रुक जाती है।

सोडियम विषाक्तता – लवणीय जल में सोडियम (Na+) और क्लोराइड (Cl-) की अधिकता पौधों की कोशिकाओं को नुकसान पहुंचाती है। इससे पत्तियाँ पीली या झुलसी हुई दिखती हैं और उत्पादन घट जाता है।

मिट्टी की संरचना का बिगड़ना– सोडियम की अधिकता मिट्टी के कणों को बिखेर देती है, जिससे मिट्टी सख्त और अपारगम्य हो जाती है। जल निकास रुक जाता है, और ऑक्सीजन की कमी से पौधों की जड़ें सड़ सकती हैं।

फलस्वरूप फसल उत्पादन में कमी, फसलों की गुणवत्ता में गिरावट, मिट्टी की स्थायी क्षति, सिंचाई की लागत और मिट्टी सुधार में अधिक खर्च, स्थानीय किसानों की आय में कमी।

पानी की गुणवत्ता से होने वाली समस्या से निबटने के लिए सबसे पहले उस पानी की रासायनिक संघटन की जांच करानी चाहिए। इस सम्बन्ध में यह जानना बहुत जरूरी है कि केवल पानी के गुणों की जांच करना काफी नहीं होगा बल्कि कई अन्य घटक जैसे फसल कौनसी हो, मिट्टी के गुण (बनावट और खनिज), जलवायु और संवर्धन अभ्यास आदि के बारे में जानना जरूरी है।

लवणों के सान्द्रण के कारकः यह पानी की विद्युत चालकता द्वारा नापा जाता है और डेसी.सीमन प्रति मीटर में बताया जाता है। पानी में पाये जाने वाले मुख्य धनायन सोडियम, मैग्नीशियम और कैल्शियम और ऋणायन क्लोराइड, सल्फेट, बाई कार्बोनेट और कार्बोनेट होते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य आयन भी बहुत थोड़ी मात्रा में हो सकते हैं जैसे पोटेशियम, नाइट्रेट, सिलिका या बोरोन आदि।

सिंचाई जल का वर्गीकरण

सिंचाई के पानी का वर्गीकरण मुख्यतः लवणों की सांद्रता (विद्युत चालकता), सोडियम अधिशोषण अनुपात (एसएआर) और अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट (आरएससी) के आधार पर किया जाता है। जहाँ लवणों की सांद्रता को विद्युत चालकता मीटर से प्रत्यक्ष रूप में मापा जा सकता है द्य वहीं सोडियम अधिशोषण अनुपात और अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट का पता पानी के रासायनिक तत्वों का प्रयोगशाला में विश्लेषण करके निम्नलिखित सूत्रों द्वारा लगाया जा सकता है।

सोडियम अधिशोषण अनुपात = **सोडियम** / √कैल्शियम मैग्नीशियम / 2

इस सूत्र में सोडियम, कैल्शियम व मैग्नीशियम की मात्रा मिली तुल्य प्रति लीटर में आंकलित की जाती है।

अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट = (कार्बोनेट+बाईकार्बोनेट) – (कैल्शियम + मैग्नीशियम)

इस सूत्र में भी सभी तत्वों की मात्रा मिली तुल्य प्रति लीटर में आंकलित की जाती है।

विभिन्न पारिस्थितिकी क्षेत्रों में पानी को गुणवत्ता के अनुसार तीन मुख्य समूहों – अच्छा, लवणीय तथा क्षारीय जल में बाँटा जा सकता है। विभिन्न जोखिम स्तर के अनुसार लवणीय तथा क्षारीय श्रेणियों को पुनः तीन उपसमूहों में बाँटा गया है (तालिका 1)। यह इसलिए आवश्यक है क्योंकि प्रत्येक उपसमूह के लिए पानी के प्रबंधन हेतु विशेष प्रक्रियाओं को अपनाने की आवश्यकता होती है।

तालिका 1 : निम्न गुणवत्ता वाले जल का वर्गीकरण

वर्गीकरण	विद्युत चालकता (डेसी सीमन प्रति मीटर)	सोडियम अधिशोषण अनुपात (मिलीमोल प्रति लीटर)	अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट (मिली तुल्य प्रति लीटर)
अच्छा जल	2.0 से कम	10.0 से कम	2.5 से कम
लवणीय जल			
कम लवणीय	2.0 – 4.0	10.0 से कम	2.5 से कम
लवणीय	4.0 से अधिक	10.0 से कम	2.5 से कम
अधिक लवणीय	4.0 से अधिक	10.0 से अधिक	2.5 से कम
क्षारीय जल			
कम क्षारीय	4.0 से कम	10.0 से कम	2.5–4.0
क्षारीय	4.0 से कम	10.0 से कम	4.0 से अधिक
अधिक क्षारीय	परिवर्तनशील	10.0 से अधिक	4.0 से अधिक

लवणीय जल का प्रबंधन :

वर्षा जल संचयन :— राजस्थान में वर्षा सीमित अवश्य है, परंतु यदि उसे सही ढंग से संग्रहित और संरक्षित किया जाए तो वह लवणीय जल की समस्या को काफी हद तक कम कर सकती है। परंपरागत प्रणाली जैसे दृतांका , जोहड़ , बावड़ी आदि का पुनरुद्धार किया जाए। ये सभी संरचनाएँ जल की लवणता घटाने में अप्रत्यक्ष रूप से योगदान देती हैं।

नहर आधारित मीठे जल की आपूर्ति— जिन क क्षेत्रो में नहर सिंचाई जल उपलब्ध हो वहा लवणीय जल को नहरी जल में मिश्रित कर उपयोग करना चाहिए या लवणीय जल को नहरी जल को चक्रीय विधि से प्रयोग करने से लवणीय जल के विपरीत प्रभाव को कम किया जा सकता है।

लवणीय जल का प्रत्यक्ष प्रयोग रू विभिन्न फसलों की लवणों के प्रति सहनशीलता भिन्न होती है। इसलिये पानी के प्रत्यक्ष प्रयोग के लिए पानी की लवणता को ध्यान में रखते हुए फसल का चुनाव करने की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिये शाक–भाजी वाली फसलें लवणों के प्रति सबसे अधिक संवेदनशील होती हैं। सामान्य रूप से तिलहन फसलें जिन्हें जल की कम आवश्यकता होती है, अधिक लवणीय जल सहन कर सकती हैं जबकि दाल की अधिकांश फसलें संवेदनशील होती हैं। सहनशीलता की सीमा मृदा के प्रकार के अनुसार भी बदलती है। तुलनात्मक रूप से अधिक लवणता वाला जल अधिक मोटे कणों वाली मृदा में प्रयोग में लाया जा सकता है। लवणीय एवं क्षारीय जल से प्रभावित क्षेत्रों में फसलों का चुनाव करते समय फसल की कुल पानी की आवश्यकता को भी ध्यान में रखना चाहिए। गन्ना एवं धान जैसी अधिक जल की आवश्यकता वाली फसलें लवणता की समस्या को बढ़ा देती हैं। अतः इन फसलों को फसल चक्र में शामिल नहीं करना चाहिये। न केवल फसलों की सहनशीलता बल्कि एक ही फसल में विभिन्न किस्मों की लवण सहनशीलता भी भिन्न हो सकती है।

लवण सहनशील फसलों की उन्नत प्रजातियों का चुनाव रू अनाज वाली फसलें तुलनात्मक रूप से लवणों के प्रति अधिक सहनशील होती हैं। फसलों के साथ ही लवणों को अधिक सहन करने वाली प्रजातियों का चयन भी प्राथमिकता के आधार पर करना चाहिये क्योंकि एक ही फसल की विभिन्न किस्मों की लवण सहनशीलता भिन्न होती है। लवणीय जल द्वारा सिंचाई को सहन करने वाली एवं अधिक उपज देने वाली कुछ किस्में विकसित की गई हैं जैसे गेहू की किस्म केआरएल 19, केआरएल 210 केआरएल 213 सरसों की किस्म सीए 52 सीएस 54 सीएस 58 आदि किस्मो का चयन किया जा सकता है।

खारे व मीठे जल का संयुक्त प्रयोगरू खारे व नहर के पानी को सिंचाई के लिए मिश्रित या संयुक्त रूप से प्रयोग करने पर होने वाला कुल लाभ उनके अलग–अलग प्रयोग किए जाने की अपेक्षा अधिक होता है। मिश्रण व चक्रीय विधियाँ जल के संयुक्त प्रयोग करने हेतु सफलतम विधियाँ हैं। शुष्क व अर्द्धशुष्क जलवायु में लवणीय जल से सिंचाई करने पर भूमि की लवणता में बहुत अधिक वृद्धि होती है। अतः लवणता में वृद्धि को कम करने के लिए लवणीय जल के साथ नहरी जल का सम्मिलित प्रयोग किया जा सकता है।

अन्य उपयोगी सस्य क्रियाएंः लवणीय जल को सिंचाई के लिए प्रयोग करते समय उपज में वृद्धि के लिए उन्नत सस्य क्रियाएं काफी लाभप्रद सिद्ध होती हैं। इन क्रियाओं में मुख्यतः निम्नलिखित हैं।

1. लवणीय वातावरण में अंकुरण अथवा कल्ले कम होने की सम्भावना रहती है। इसलिए बीज की दर में 25 प्रतिशत वृद्धि अथवा पौधारोपण के समय 25 से 30 प्रतिशत पौधे अधिक लगाने से उपज में वृद्धि हो सकती है।
2. लवणीय वातावरण में पौधों की नाइट्रोजन ग्रहण करने की क्षमता में कमी आती है, इसीलिए 25 प्रतिशत अधिक नाइट्रोजन प्रयोग करने की सिफारिश की गई है। फास्फोरस एवं पोटाश की सिफारिश भूमि एवं जल परीक्षण के उपरान्त ही की जा सकती

है।

3. फसलों में सिंचाई के पानी की मात्रा उतनी ही रखने की सलाह दी जाती है जितनी कि अच्छे पानी के साथ। लेकिन लवणीय पानी के साथ हल्की और अधिक संख्या में सिंचाइयाँ लाभप्रद सिद्ध हुई हैं।

4. बुआई पूर्व अथवा बुआई उपरान्त पहली सिंचाई अच्छे जल से करने के अच्छे परिणाम मिले हैं। यही कारण है कि क्रमिक सिंचाई प्रणाली में भी अच्छे जल से पहली सिंचाई करना लाभप्रद सिद्ध होता है।

5. लवणीय पर्यावरण में जैव पदार्थों के प्रयोग से उपज बढ़ती है।

6. उन्नत सिंचाई विधियों का प्रयोग लवणीय जल के समुचित प्रयोग के लिए लाभप्रद सिद्ध हुआ है।बूँद बूंद सिंचाई प्रणाली, सतही सिंचाई प्रणाली की अपेक्षा अधिक लवणीय पानी के प्रयोग में सहायक सिद्ध हुई है द्य

7. शुष्क क्षेत्रों में जहाँ भूमिगत जल खारा होने के कारण फसलोत्पादन के लिए प्रयोग में नहीं लाया जा सकता है उस जल से वृक्षारोपण किया जा सकता है। भूमि में खारे पानी द्वारा सिंचाई से वृक्षारोपण करके अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है और चारा, ईंधन एवं इमारती लकड़ी की आवश्यकता को भी पूरा किया जा सकता है। यही नहीं, फलदार वृक्ष भी लगाए जा सकते हैं तथा बीच के हिस्से में कम पानी की आवश्यकता वाली फसलें भी ली जा सकती हैं।

लेखक अपने आलेख dee@raubikaner.org / rajeshvermasct@gmail.com पर हिन्दी फोन्ट कृतिदेव 10 में वर्ड फाईल व पीडीएफ दोनों में भिजवाने का श्रम करें।

सरसों की खेती का प्रबंधन

जयपाल[1], शीतल कुमावत[2], साधना जांगिड[2], डॉ. अरविन्द कुमार झाझडिया[3], डॉ. एस.एम. कुमावत[4], डॉ. आर. के. वर्मा[5]

भारतीय सरसों (Brassica juncea L.) Brassicaceae परिवार की सदस्य है, जिसे भूरी सरसों या इंडियन मस्टर्ड भी कहा जाता है। यह दुनिया में प्रमुख रबी सीजन तिलहन फसलों में से एक है। सरसों की खेती के तहत दुनिया के 10.1 प्रतिशत क्षेत्र के साथ भारत दुनिया के प्रमुख रेपसीड सरसों उगाने वाले देशों में तीसरे स्थान पर है। देश की कुल खाद्य तेल आवश्यकता का केवल लगभग 50 प्रतिशत ही घरेलू उत्पादन से पूरा होता है, जबकि अधिकांश आवश्यकता अन्य देशों से आयात करके पूरी की जाती है। दुनिया में वनस्पति तेल के अग्रणी उत्पादक होने के बावजूद, भारत दुनिया में खाद्य तेल का सबसे बड़ा आयातक है। खाद्य तेल में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना तभी संभव है जब पोषक तत्वों और खरपतवारों के प्रबंधन के लिए उन्नत प्रौद्योगिकियों के माध्यम से वार्षिक खाद्य तिलहन फसलों की उत्पादन क्षमता का उपयोग किया जाए। सरसों के प्रमुख उत्पादक देशों में कनाडा, चीन, भारत, और जर्मनी प्रमुख हैं। भारत में, सरसों की खेती मुख्य रूप से राजस्थान, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, मध्य प्रदेश और गुजरात राज्यों में की जाती है। इसकी खेती कुछ पूर्वोत्तर राज्यों के मैदानी इलाकों में भी की जाती है, जिसमें बिहार, छत्तीसगढ़, झारखंड, ओडिशा, पूर्वी उत्तर प्रदेश, सिक्किम और पश्चिम बंगाल शामिल हैं।

भारत विश्व के शीर्ष सरसों उत्पादक देशों में से एक है। भारत में रेपसीड सरसों का क्षेत्र, उत्पादन और उत्पादकता क्रमशः 9.18 मिलियन हेक्टेयर, 13.26 मिलियन टन और 1444 किग्रा/हेक्टेयर थी। राजस्थान भारत का सबसे बड़ा सरसों उत्पादक राज्य है, जिसकी हिस्सेदारी लगभग 40प्रतिशत से अधिक है। राजस्थान में रेपसीड सरसों का क्षेत्र, उत्पादन और उत्पादकता क्रमशः 4 मिलियन हेक्टेयर, 6.29 मिलियन टन और 1572 किग्रा/हेक्टेयर थी।

सरसों का महत्व

सरसों भारत की एक महत्वपूर्ण तिलहन फसल है और इसका कृषि, आर्थिक, पोषणीय तथा औद्योगिक महत्व अत्यधिक है। यह फसल किसानों के लिए एक नकदी फसल के रूप में काम करती है क्योंकि कम लागत और सीमित जल संसाधन में भी इसे उगाया जा सकता है। भारत खाद्य तेल का सबसे बड़ा आयातक देश है और सरसों के उत्पादन को बढ़ाकर देश की तेल आत्मनिर्भरता सुनिश्चित की जा सकती है। सरसों के बीजों में लगभग 38–40प्रतिशत तेल और 20–22प्रतिशत प्रोटीन पाया जाता है, जिसमें ओमेगा–3 फैटी एसिड, मोनो–असंतृप्त वसा और एंटीऑक्सीडेंट्स मौजूद होते हैं। यह हृदय रोग, मोटापा और मधुमेह नियंत्रण में लाभकारी है। सरसों के तेल में लगभग 60प्रतिशत मोनोअनसैचुरेटेड फैटी एसिड (42प्रतिशत इरुसिक एसिड और 12ः ओलिक एसिड), 21प्रतिशत पॉली असंतृप्त वसा (6प्रतिशत ओमेगा –3 अल्फा–लिनोलेनिक एसिड और 15प्रतिशत ओमेगा –6 लिनोलिक एसिड), और लगभग 12प्रतिशत संतृप्त वसा होता है। इसके अलावा, सरसों का साग विटामिन A, C और K से भरपूर होता है, जो रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है।

बीज से पहले की तैयारीः

भूमि की तैयारी भी बीज से पहले की तैयारी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। मिट्टी को भली–भांति जुताई करके इसे ढीला, समतल और अच्छी जल निकासी वाली बनाना आवश्यक है। पारंपरिक जुताई, कम

1. विद्या वाचस्पति छात्र, कृषि प्रसार एवं संचार विभाग, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर 2. अतिथि संकाय, कीट विज्ञान व मृदा विज्ञान , कृषि महाविद्यालय, चांदगोठी, चूरू 3. सहायक आचार्य, कृषि प्रसार एवं संचार विभाग, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर 4. अधिष्ठाता, कृषि महाविद्यालय, चांदगोठी, चूरू 5. आचार्य, कृषि प्रसार एवं संचार विभाग, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

जुताई और शून्य जुताई जैसी विधियों का चयन मिट्टी के प्रकार, जलवायु और फसल की किस्म के आधार पर किया जाता है। पारंपरिक जुताई मिट्टी को पूरी तरह पलटती है और खरपतवार नियंत्रण में मदद करती है, जबकि कम जुताई और शून्य जुताई मिट्टी की नमी बनाए रखने, कटाव कम करने और ऊर्जा की बचत करने में मदद करती हैं। इसके अतिरिक्त, बीज बुवाई से पहले मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता सुनिश्चित करना भी आवश्यक है। इस प्रकार, बीज से पहले की तैयारी में उच्च गुणवत्ता वाले बीज का चयन,, मिट्टी की उचित जुताई, पोषक तत्वों की उपलब्धता और सिंचाई का समुचित प्रबंधन शामिल होता है।

बुआई:

बुवाई का समय भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। आम तौर पर सरसों की बुवाई अक्टूबर से नवंबर के बीच की जाती है, ताकि ठंड के समय फसल मजबूत होकर विकसित हो सके।सरसों के लिए अनुशंसित रिक्ति 30 × 10 सेमी है, जबकि संकर के लिए, यह 45 × 10 सेमी है।

सरसों के बीज की मात्रा और बीज उपचार

सामान्यतः सरसों की बुवाई के लिए 4–5 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है, लेकिन यह मिट्टी की उर्वरता, किस्म और जलवायु परिस्थितियों के अनुसार भिन्न हो सकती है।

बीज उपचार में आमतौर पर कवकनाशी (फफूंदनाशक), कीटनाशी , जीवाणु खाद (बायो–फर्टिलाइजर) का क्रम अपनाया जाता है।

कवकनाशी: मैटालेक्सिल एक प्रभावी कवकनाशी है, जिसका उपयोग सफेद रोली और मृदु रोमिल आसिता फफूंदजन्य रोग के उपचार में किया जाता हैं।

जड़ गलन के लिए थायरम या मैन्कोजेब की 3 ग्राम/किग्रा बीज मात्रा काम में लेते हैं।

जीवाणु खाद (पीएसबी) के तीन पैकेट/हेक्टेयर की दर से मिलायें।

सरसों की उन्नत किस्में

सरसों की खेती के लिए उन्नत किस्मों का चयन किसानो को अपने क्षेत्र की परिस्थितियों के अनुसार करना चाहिए। कुछ प्रचलित और अधिक उपज वाली किस्में इस प्रकार है, जैसे–

सिंचित क्षेत्र: DRMR 1165–40 (रुक्मणी), DRMRIC 16–38 (बृजराज), DRMR 2017–15 (राधिका), NRCDR 02, NRCDR 601, NRCHB 101, DRMRIJ 31, DRMR150–35, लक्ष्मी, नरेन्द्र अगेती राई– 4, वरूणा (टी– 59), बसंती (पीली), रोहिणी, माया, उर्वशी, नरेन्द्र स्वर्णा–राई– 8 (पीली), नरेन्द्र राई (एन डी आर– 8501), सौरभ, वसुन्धरा (आरएच– 9304) और अरावली (आरएन– 393), RGN – 298, RGN – 229, RGN – 236, RGN – 145 प्रमुख है।

असिंचित क्षेत्र: वैभव, वरूणा (टी – 59), पूसा बोल्ड और आरएच– 30 प्रमुख है।

विलम्ब से बुवाई: आशीर्वाद और वरदान प्रमुख है।

क्षारीय/लवणीय भूमि हेतु: नरेन्द्र राई, सी एस– 52 और सी एस– 54 आदि प्रमुख है।

उर्वरक प्रबंधन:

सरसों की फसल में उर्वरक प्रबंधन उत्पादन और बीज की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। सरसों की पौधों को समुचित वृद्धि और उच्च बीज तथा तेल की उपज के लिए प्रमुख पोषक तत्वों जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम और सल्फर की आवश्यकता होती है। नाइट्रोजन पौधों की हरियाली, पत्तियों और शाखाओं के विकास के लिए आवश्यक है, जबकि फास्फोरस जड़ प्रणाली के विकास, फूल और फली निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पोटेशियम पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के साथ–साथ पानी के उपयोग की दक्षता को भी सुधारता है।

सल्फर का सरसों की खेती में विशेष महत्व है क्योंकि यह बीज में तेल संश्लेषण, प्रोटीन गठन, अमीनो एसिड, एंजाइम और क्लोरोफिल उत्पादन में सहायक होता है। सल्फर की पर्याप्त आपूर्ति से बीज और तेल की पैदावार में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। इसके अलावा, सरसों संवेदनशील फसल होने के कारण जिंक और बोरॉन जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों की

कमी से भी उत्पादन प्रभावित हो सकता है।

उर्वरक की खुराक, समय और आवेदन विधि मिट्टी की उर्वरता, जलवायु और फसल प्रणाली पर निर्भर करती है। सिंचित फसल के लिये 90 किलोग्राम नत्रजन 30–40 किलोग्राम फास्फोरस एवं 250 किलोग्राम जिप्सम या 40 किलोग्राम सल्फर प्रति हैक्टेयर डालें। बारानी फसल के लिये सिंचित फसल की आधी मात्रा उर्वरक काम में ले। नत्रजन की आधी मात्रा व फास्फोरस की पूरी मात्रा बुवाई के समय ऊरकर देवें। शेष नत्रजन की आधी मात्रा फसल में सिंचाई के समय डालें। असिंचित फसल में ऊपर बताये गये उर्वरक मात्रा की आधी मात्रा ही बुवाई के समय काम में ले।

जल प्रबंधनः

सरसों की फसल में जल प्रबंधन उत्पादन और फसल स्वास्थ्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह संवेदनशील फसल होने के कारण जल तनाव से पौधों की वृद्धि, फूल, फली के विकास और अंततः उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से, सिंचाई का समय और मात्रा क्रांतिक (ब्तपजपबंस) अवस्थाओं पर निर्भर करती है।

सिंचित परिस्थितियों में, दो से तीन सिंचाई करने से अधिकतम लाभ मिलता है। सिंचाई के लिए तीन क्रांतिक अवस्थाएँ हैं, जिनका प्रबंधन उपज बढ़ाने के लिए आवश्यक हैः

1. पहली सिंचाई (शाखाकरण अवस्था)ः बुवाई के लगभग 35–45 दिन बाद। यह पौधों में अधिक शाखाएँ और फूल सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण है।
2. दूसरी सिंचाई (फूल आने की अवस्था)ः बुवाई के लगभग 60–70 दिन बाद। फूल आने के दौरान पानी की कमी सीधे फलियों के निर्माण को प्रभावित करती है।
3. तीसरी सिंचाई (फली भरने की अवस्था)ः बुवाई के लगभग 90–100 दिन बाद। इस अवस्था में पर्याप्त नमी से बीजों का आकार और तेल की मात्रा बढ़ती है।

खरपतवार प्रबंधनः

सरसों की फसल में खरपतवार प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है क्योंकि खरपतवार फसल के लिए जरूरी पोषक तत्व, पानी, प्रकाश और स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। यदि इन्हें समय पर नियंत्रित न किया जाए तो यह फसल की उपज को 15–30 प्रतिशत तक कम कर सकते हैं और कभी–कभी पूरी फसल नष्ट होने का जोखिम भी रहता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से खरपतवार प्रबंधन में विभिन्न विधियों का संयोजन किया जाता है, जिसमें शारीरिक, रासायनिक और सांस्कृतिक नियंत्रण शामिल हैं। शारीरिक विधियों में हाथ से निराई, मल्चिंग और मिट्टी की हल्की जुताई शामिल हैं, जो पौधों के लिए खरपतवार मुक्त वातावरण तैयार करती हैं और बीज उपज बढ़ाने में मदद करती हैं।

रासायनिक नियंत्रण में सही समय पर उपयुक्त हर्बिसाइड का प्रयोग फसल को नुकसान पहुँचाए बिना खरपतवार को नियंत्रित करने में सहायक होता है। रासायनिक नियंत्रण के लिए अंकुरण पूर्व बुवाई के तुरंत बाद खरपतवारनाशी पेंडीमेथालीन 30 ईसी खरपतवारनाशी की 3.3 लीटर मात्रा को प्रति हैक्टर की दर से 800 से 1000 लीटर पानी में घोल कर छिडकाव करना चाहिए।

भूमि में अच्छी नमी में बुवाई के 48 घंटो में छिड़काव करने से अच्छा लाभ होता हैं। खरपतवारनाशक की कार्य कुशलता बढ़ाने हेतु छिड़काव करते समय फ्लैट फैन या फ्ल्ड जैट नोजल का प्रयोग और साफ पानी का प्रयोग करें। एक ही खरपतवारनाशक हर साल प्रयोग न करें। इससे खरपतवारों में सहनशीलता बनती है। इसके अलावा, परजीवी खरपतवार जैसे ओरोबेंकि विशेष समस्या पैदा कर सकते हैं, जिसके लिए फसल रोटेशन अपनाना, जैसे कि लोबिया, काले चने और क्लस्टर बीन की पूर्व फसल, संक्रमण को कम करने में मदद करता है। सांस्कृतिक और जैविक प्रथाएं जैसे पौधों की उचित दूरी बनाए रखना, नियमित फसल रोटेशन और मिट्टी की ढुलाई, खरपतवार की वृद्धि को दबाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

रोग एवं कीट प्रबंधन

सरसों की फसल में विभिन्न

प्रकार के रोग और कीट लगते हैं, जो उत्पादन में भारी कमी का कारण बनते हैं। उचित समय पर इनका प्रबंधन करना अत्यंत आवश्यक है ताकि फसल की गुणवत्ता और उपज दोनों सुरक्षित रहें।

मुख्य रोग एवं उनका प्रबंधनः

1. अल्टरनेरिया ब्लाइट (Alternaria Blight): इस रोग में पत्तियों, तनों और फलों पर काले गोल धब्बे दिखाई देते हैं। इससे दाने सिकुड़ जाते हैं। नियंत्रण के लिए बोविस्टिन या मैनकोजेब (0.2प्रतिशत) का छिड़काव 10–15 दिन के अंतर पर दो से तीन बार करें।

2. सफेद रस्ट (White Rust): इस रोग में पत्तियों के नीचे सफेद फफूंद जैसे धब्बे बनते हैं। रोगग्रस्त पौधों को नष्ट करें और रिडोमिल गोल्ड (0.25 प्रतिशत) का छिड़काव करें।

3. तना गलन या स्क्लेरोटिनिया रोट (Stem Rot): यह रोग पौधे के तने को सड़ा देता है जिससे पौधा गिर जाता है। इसके नियंत्रण के लिए ट्राइकोडर्मा हरजियानम से बीज उपचार करें तथा फसल चक्र अपनाएँ।

4. पाउडरी मिल्ड्यू (Powdery Mildew): पत्तियों पर सफेद पाउडर जैसा आवरण बनता है। इसके नियंत्रण के लिए सल्फर 80 प्रतिशत डब्ल्यूपी का 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

मुख्य कीट एवं उनका प्रबंधनः

1. एफिड (लाही या माहू): ये रस चूसक कीट हैं जो पत्तियों और तनों पर समूह बनाकर रस चूसते हैं। नियंत्रण हेतु नीम तेल (5 मिली प्रति लीटर पानी) या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 प्रतिशत एसएल (0.3 मिली प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करें।

2. पेंटेड बग (Painted Bug): यह बीजों का रस चूसता है जिससे अंकुरण घट जाता है। फसल के आसपास खरपतवार हटाएँ और प्रारंभिक अवस्था में मेलाथियान 50 ईसी (2 मिली प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करें।

3. कैबेज बटरफ्लाई या डायमंड बैक मॉथः यह कीट पत्तियों को छेदकर खाता है। नियंत्रण के लिए स्पिनोसैड 45 एससी (0.3 मिली प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करें।

समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन (IPM):

बीजों को फफूंदनाशी (थायरम या कार्बेन्डाजिम 2.5 ग्राम/किलो बीज) से उपचारित करें।

रोग व कीट प्रतिरोधी किस्मों का चयन करें।

समय पर बुवाई करें और संतुलित उर्वरक प्रयोग करें।

पीले चिपचिपे जाल (Yellow Sticky Traps) लगाएँ ताकि उड़ने वाले कीट फँस सकें।

फसल अवशेषों को खेत से बाहर निकालकर नष्ट करें।

कटाई और लाभ

सरसों की फलियां जब लगभग 70–80 प्रतिशत फलियां पीली पड़ जाएं, तब कटाई करना उचित रहता है। देरी करने से फलियां फट सकती हैं और बीज खेत में झड़ सकते हैं जिससे नुकसान होता है।

निष्कर्ष

सरसों की खेती भारत की तिलहनी फसलों में महत्वपूर्ण स्थान रखती है और किसानों की आय बढ़ाने के साथ–साथ देश की खाद्य व तेल सुरक्षा सुनिश्चित करने में सहायक है। बेहतर उत्पादन के लिए वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग, जैसे उचित बीज मात्रा का चयन, समय पर बुवाई, उर्वरक और जल प्रबंधन, खरपतवार नियंत्रण तथा बीज उपचार जैसी तकनीकों का समुचित पालन आवश्यक है। इन उपायों से न केवल फसल की उत्पादकता बढ़ती है बल्कि बीज और तेल की गुणवत्ता में भी सुधार होता है। इसके साथ ही, फसल चक्र अपनाकर और पोषक तत्वों के संतुलित उपयोग से मिट्टी की उर्वरता बनाए रखी जा सकती है। सरसों की खेती वैज्ञानिक दृष्टिकोण से करने पर यह न केवल किसानों के लिए लाभकारी बन सकती है बल्कि सतत कृषि प्रणाली और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी मजबूती प्रदान कर सकती है। इस प्रकार, सरसों की खेती भारतीय कृषि में स्थायी विकास और आत्मनिर्भरता की दिशा में एक सशक्त कदम है।

नवम्बर माह के कृषि कार्य

डॉ. विजय प्रकाश, निदेशक अनुसंधान
स्वा. के. रा. कृ. वि., बीकानेर

सस्य विज्ञानः–

गेहूँ :–बुआई का उपयुक्त समयः 10 नवम्बर से 25 नवम्बर। देरी से बुवाई 26 नवम्बर से 20 दिसम्बर तक की जा सकती है। बीज दरः सामान्य समय से बोई जाने वाली फसल के लिये 100 कि.ग्रा. तथा देर से बोई जाने वाली फसल में 125 किलोग्राम बीज प्रति हैक्टेयर काम में लावे।बुवाईः बुवाई 27.5 से.मी. की दूरी पर कतारों में करें। बीज 5 से.मी. से अधिक गहरा न डालें। उपयुक्त किस्में: (1) समय बुवाई हेतु : राज–3077, डब्ल्यू.एच.–147, एच.डी.–2687 एवं एच.डी.–2329, राज–1482, राज–4238, डी.बी. डब्ल्यू.187, डी.बी. डब्ल्यू.303 देर से बुवाई हेतु : राज–3077, राज–3777, राज–4120, राज–4083, डब्ल्यू. एच.–147, राज–3765, पी.वी.डब्ल्यू–226, पी.वी. डब्ल्यू–373 एवं नहरी क्षेत्र में अगेती बुवाई हेतु राज–3077, राज–1482 की बुवाई करे। खाद एवं उर्वरक : अच्छी सड़ी गोबर की खाद बुवाई के 4–6 सप्ताह पूर्व खेत में डालकर मिलाये। एक हैक्टेयर में 5 टन खाद पर्याप्त है। 120 किलोग्राम नत्रजन, 40 किलोग्राम फॉस्फोरस तथा 20 किलोग्राम पोटाश प्रति हैक्टेयर डालें। नत्रजन की आधी मात्रा तथा सम्पूर्ण फॉस्फोरस एवं पोटास ऊरकर बुवाई के समय खेत में डालें।

जौ : बुवाई का उपयुक्त समयः 10 नवम्बर से 25 नवम्बर, देरी से बुवाई 20 दिसम्बर तक की जा सकती है। बीजदरः 80 से 100 किलोग्राम बीज प्रति हैक्टेयर काम में लाये। बुवाई 20 से.मी. की दूरी पर कतारों में करें। उपयुक्त किस्में: आर.डी.–2035, आर.डी.–2052, आर.डी.–2715, आर.डी. –57 (चारा एवं दाना), बी.एल.–2, आर.डी.–2508 खाद एवं उर्वरकः 80 किलोग्राम नत्रजन+40 किलोग्राम फॉस्फोरस + 24 किलोग्राम पोटाश प्रति हैक्टेयर डालें। नत्रजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस एवं पोटाश ऊरकर बुवाई के समय कतारों में खेत में डालें। रेतीली भूमि में 100 किलोग्राम नत्रजन प्रति हैक्टेयर काम में लेवें।

जीरा : बुवाई का उपयुक्त समयः 15 नवम्बर से 30 दिसम्बर। उपयुक्त किस्में : आर.जेड.–19, आर.एस.–1, जी.सी.–4, आर.जेड.–223 उर्वरकः 40 किलोग्राम नत्रजन+32 किलोग्राम फॉस्फोरस प्रति हैक्टेयर बुवाई के समय डालें।

मैथी : बुवाई का उपयुक्त समयः अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह से 10 नवम्बर तक बुवाई की जा सकती है। बीजदर : दाना मैथी के लिए 20 से 25 किलोग्राम बीज प्रति हैक्टेयर उपयुक्त है। उपयुक्त किस्में : देशी मैथी, आर.एम.टी.–1, आर.एम.टी.–305, एएफजी–4, एएफजी–5 उर्वरकः 60 किलोग्राम नत्रजन+40 किलोग्राम फॉस्फोरस प्रति हैक्टेयर डालें। नत्रजन तीन बराबर भागों में बॉटकर 1/3 बुवाई के समय, 1/3 द्वितीय सिंचाई एवं 1/3 मात्रा तृतीय सिंचाई पर डालें।

ईसबगोल : बुवाई का समयः अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह से नवम्बर का प्रथम सप्ताह। किस्में – जी.आई–2, आइ.आई. –89, आइ.आई.–3025 बीजदरः– 08 किलोग्राम बीज प्रति हैक्टेयर डालें। उर्वरकः– 20–30 किलोग्राम नत्रजन एवं 32 किलोग्राम फास्फोरस प्रति हैक्टेयर डालें। बुवाई 30 से.मी. पर कतारों में करें।

पौध व्याधि :–

चना : नवम्बर माह में चने की बुवाई के तुरन्त बाद लगने वाली प्रमुख बिमारियॉ व उनसे बचने के उपाय निम्न प्रकार से है : उकठा (विल्ट) रोग : यह रोग भूमि जनित है जो फ्यूजेरियमआक्सीस्पोरमव आर्थोसीरोस नामक कवक द्वारा फैलता है। लक्षणः चने में बुवाई के 10 से 15 दिन बाद में यह रोग दिखाई देता है। पौधा ऊपर से मुरझाकर सूखना शुरु हो जाता है। यह रोग खेतों में खण्डों में दिखाई पड़ता हैं। मुरझाये हुये पोधे को उखाड़कर देखने पर जड़े पूरी तरह विकसित दिखाई देती है लेकिन मुख्य जड़ को चीर कर देखने पर बीच में हल्के भूरे या गुलाबी रंग की धारी दिखाई देती है, फ्यूजेरियम कवक के कोनिडिया का जमाव होने से जड़ों का भूमि से भोजन, पानी लेने वाली नलिका अवरुद्ध हो जाती है। फलस्वरुप पौधा मुरझाकर मर जाता है। नियंत्रण : बुवाई से पूर्व बीजों को कार्बेडेजिम दवा का 2. 00 ग्राम या थाईरम 2.5 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार करके बुवाई करे। बुवाई के बाद में प्रकोप दिखाई देने पर पानी के साथ (सिंचित में) कार्बेडेजिम 0.2

प्रतिशत देवें। जड़ सड़न रोगः इस रोग के कारक राइजोक्टोनिया बटाटिकोला या मेक्रोफोमिना फेजियोलिना नामक फफूँद है, यह भूमि जनित रोग है। लक्षण : पौधा अचानक मुरझाकर मरना शुरु हो जाता है। रोगी पौधों को उखाड़कर देखने पर जड़े काली पड़ी हुई नजर आती है। नियंत्रण : बुवाई से पूर्व बीजों को कार्बेडेजिम दवा का 2.00 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार करके बुआई करें। बुवाई के बाद में प्रकोप दिखाई देने पर पानी के साथ (सिंचित में) कार्बेडेजिम 0.2 प्रतिशत देवें।

रोगरोधी किस्में : जी.एन.जी.–663 (वरदान) एवं जीन. एन.जी.–1581(गणगौर) – उकठा रोग रोधी, उपज 20 से 24 क्विंटल प्रति हैक्टेयर। जी.एन.जी.–469 (सम्राट) – मोटे दानें वाली किस्म, उकठा रोग रोधी, जड़ सड़न, कालर रोट व झुलसा रोग रोधी, उपज 24 से 25 क्विंटल प्रति हैक्टेयर। सी.–235 एवं जी.एन.जी.–146– एस्कोकाइटा ब्लाइट रोग रोधी किस्म।

गेहूँ : नवम्बर माह में गेहूँ की बुवाई के बाद लगने वाली प्रमुख बिमारियॉ व उनसे बचने के उपाय के लिए निम्न प्रकार से बीजोपचार करें। अनावृत कण्डवा एवं पत्ती कण्डवा रोग का प्रकोप कम करने हेतु विटावेक्स अथवा कार्बेडेजिम दवा का 2.00 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार करके बुवाई करें। ईयर कोकल व टुण्डू रोग के प्रभाव को कम करने के लिए बीजो को 20 प्रतिशत नमक के घोल से उपचारित करके बुवाई करें। झुलसा व पत्ती धब्बा रोग से बचने हेतु थायरम 2 ग्राम किलोग्राम बीज या मैन्कोजेब 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करें।जिन क्षेत्रों में मोल्या रोग का प्रकोप लगातार 2 वर्ष से आ रहा है वहॉ गेहूँ की फसल की बजाय मोल्या रोग रोधी जौ की किस्म राजकिरण की बुवाई करें। फसल चक्र में चना, सरसों, मैथी भी बोयी जा सकती है। रोली रोग नियंत्रण हेतु रोधक किस्में जैसे राज.–1482 एवं एच.डी.–2009 की बुवाई करें।

सरसों एवं तारामीरा : बुवाई से पूर्व तुलासिता एवं सफेद रोली एप्रौन एस.डी. 6 ग्राम प्रति किलो की दर से उपचारित करने के बाद में बुवाई करें। बुवाई से पूर्व विभिन्न कवक जनित रोगो से बचाव हेतु मैन्कोजेब 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करें तथा रोग के लक्षण दिखाई देने पर 2 ग्राम लीटर की दर से छिड़काव करें। उन्नत किस्में : वरुणा (टी–59), पूसा बोल्ड, बायो–902 एवं तारामीरा में टी–26 किस्म का प्रयोग करें।

जीरा : माह नवम्बर में जीरा की बुवाई होनी है। इसमें उखटा रोग (विल्ट) प्रमुख है जो फ्यूजेरियम आक्सीस्पोरम फार्म स्पीसीज क्यूमीनाई नामक कवक द्वारा फैलता हैं। यह मृदा जनित रोग है। इसका प्रकोप फसल की किसी भी अवस्था में हो सकता है। बुवाई के तुरन्त बाद ज्यादा संभावना रहती है। रोग ग्रसित पौधे मुरझा कर सूख जाते है। जड़ों को छिलने पर गहरी भूरी एवं गुलाबी लकीर नजर आती है। नियंत्रण : रोग रहित बीज काम में लाये।रोग ग्रसित क्षेत्र में 3 वर्ष तक जीरा न बोयें। बुवाई से पूर्व बीजों को कार्बेडेजिम दवा का 2.00 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार करें। बुवाई से पूर्व खेत में 2.5 किलो ट्राइकोडर्मा को 100 किलो गोबर की खाद में मिलाकर प्रति बीघा के हिसाब से 5–10 दिन पूर्व डलवावें।

मैथी : तुलासिता (डाउनी मिल्ड्यू) के नियंत्रण हेतु मैन्कोजेब 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज दर से उपचारित करें।

प्रमुख सब्जियॉ –

मिर्च एवं टमाटर : पर्ण कुंचन व मौजक रोग– विषाणु जनित रोग है। प्रकोप से पत्ते सिकुड़कर मर जाते है। पौधे की बढ़वार रुक जाती है तथा छोटे रह जाते है। मौजेक रोग से पत्तियों पर गहरे एवं हल्के पीलापन लिये हुये धब्बे बन जाते है। रोग का प्रसारण सफेद मक्खी के कारण होता है। रोकथाम : रोग के फैलने से रोकने के लिए पुष्प आने से पूर्व डाइमिथोएट 30 ई.सी. 1 मिली/लीटर पानी के हिसाब से घोल का छिड़काव करें। नर्सरी तैयार करते समय बुवाई से पूर्व कार्बोफ्यूरान 3ः (कणीय कीटनाशी) 8–10 ग्राम/वर्ग मीटर के हिसाब से भूमि में मिलाये। फूल आने पर मैलाथियोन 50 ई.सी. 1 मिली/लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें।

बैंगन :–छोटी पत्ती रोग (लीटल लीफ) : यह रोग फाईटोप्लाज्मा द्वारा फैलता है जिसका प्रसारण जैसिड (हिसीमोनस फाइसिटिस) द्वारा होता है। पत्तियों का आकार छोटा होकर गुच्छों के रुप में हो जाता है। पौधा छोटा रहकर पीला पड़कर मर जाता है। फल एवं फूल भी नहीं लग पाते है।

नियंत्रण :– रोग ग्रसित पौधे को उखाड़ कर नष्ट करें।

रोकथाम एवं प्रसारण रोकने हेतु प्रथम लक्षण दिखाई देते ही फूल एवं फल आने से पूर्व मोनोक्रोटोफोस 36 एस.एल. 1 मिली/लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करें।

पालक: आर्द्र गलन (डेम्पिंग ऑफ) – पौधे के उगते ही यह रोग हो जाता है जिसमें पौधे करनें लगते है और क्यारी खाली होनें लग जाती है। यह रोग भूमि एवं बीज जनित होता है। रोकथाम हेतु बुवाई से पूर्व बीज को 3 ग्राम थायरम/किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करे। उन्नत किस्में जोबनेर ग्रीन, पूसा हरित, पूसा ज्योति एवं आल ग्रीन ही काम में लाये।

फूल एवं पत्ता गोभी: भूरी गलन एवं लाल सड़न – यह रोग बोरोन तत्व की कमी के कारण होता है। गोभी के फूल पर गोल आकार के भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते है जो बाद में फूल को सड़ा देते हैं। रोकथाम : रोपाई से पूर्व खेत में 10–15 किलो बोरेक्स प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करे अथवा खड़ी फसल पर 0.2 – 0.3 प्रतिशत बोरेक्स के घोल का छिड़काव करें।

आर्द्र गलन (डेम्पिग ऑफ) : यह रोग गोभी की अगेती किस्मों में होता है। जमीन की सतह पर का भाग काला पड़ कर कमजोर हो जाता है तथा नन्हें पौधे गिर कर मरने लगते हैं। रोकथाम : रोकथाम हेतु बुवाई से पूर्व बीज को 3 ग्राम थायरम/किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करे। लक्षण दिखाई देते ही कॉपर आक्सीक्लोराइड 3 ग्राम/लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़के।

काला सड़न: बीजों की क्यारी में नयी पौध पर यह रोग अधिक होता है। पौधो की पत्तियों के किनारों पर जगह–जगह पीले चकते दिखाई देते है व शीरायें काली दिखाई देती है। उग्र अवस्था में फूल का डण्ठल अन्दर से काला पड़ जाता है। रोकथाम : बुवाई से पूर्व बीज को स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 250 मिग्रा या कार्बेडेजिम एक ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल में 2 घंटे तक भीगोकर सुखाये व बुवाई करे। पौध रोपण से पूर्व पौध की जड़ों को उपरोक्त घोल में एक घंटा तक डूबोकर लगावे। लक्षण दिखाई देने पर उपरोक्त घोल का छिड़काव करें।

फलों के रोग: बेर: छाछिया रोग: रोग का कारण ओईडियम नामक कवक है। इस रोग का प्रकोप सर्द मौसम में दिखाई पड़ता है। इसमें बेर की टहनियॉ, पत्तियॉ व फल सफेद अवरण से ढक जाते है। प्रभावित पत्तियों एवं फलों की वृद्धि रुक जाती हैं। पत्तियॉ धीरे–धीरे पड़कर गिर जाती है। उग्र अवस्था में यह टहनियॉ एवं फलों पर आक्रमण करता है जिसमें फल फट कर गिर जाते हैं। रोकथाम : रोकथाम के लिए केराथियोन एल.सी. 1 मिली/लीटर पानी की दर से घोल का 15 दिन के अन्तराल पर तीन छिड़काव करें। पत्ती धब्बा/झुलसा रोग : रोग का कारक अन्टरनेरिया अलटरनेटा नामक कवक है। रोकथाम हेतु मैन्कोजेब 2 ग्राम/लीटर पानी की दर से छिड़काव करे।

नींबू :– कैंकर रोग : जैन्थोमोनास नामक जीवाणु से फैलनें वाले इस रोग से पत्तियों, टहनियों व फलों पर भूरे रंग के मध्य से खुरदरे व कार्कनुमा धब्बे बनतें है। टहनियें एवं शाखाओं पर लम्बे धब्बे बनते हैं। जिसमें टहनियां सूखकर टूट जाती है। उग्र अवस्था में पौधा सूखने लगता है। रोकथाम : रोकथाम के लिए लक्षण प्रकट होते ही स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 250 मिली ग्राम एवं कॉपर आक्सीक्लोराइड–50 0.3 प्रतिशत घोल बनाकर 20 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें।

अनार :– पत्ती धब्बा रोग : यह रोग अल्टरनेरिया नामक कवक द्वारा फैलता है। फलस्वरुप पत्तियों पर काले रंग के धब्बे बन जाते है। उग्र अवस्था में पत्तियॉ सूखकर गिरनी शुरु हो जाती हैं। रोकथाम : रोकथाम के लिए टोपसिन एम नामक दवा का 1 ग्राम/लीटर पानी में की दर से छिड़काव करें।

उद्यानिकी :– फलोद्यान : बेर वृक्षों में फल बननें का समय है अतः वृक्षों में भारी सिंचाई न करें एवं कीटनाशी दवाओं का प्रयोग मटर दानें के आकार के फल बनने के बाद ही करे। अनार के फलों को फटनें से बचाने के लिये नियमित सिंचाई करतें रहें। पौधों की निराई–गुड़ाई का विशेष ध्यान रखें। नींबू वर्गीय फल वृक्षों में पादप संरक्षण का कार्य करें। फलों को गिरनें से बचानें के लिए पलेनोफिक्स 1 मिली को 5 लीटर पानी में मिलाकर पौधों पर छिड़काव करें।

सब्जियॉ : मिर्च में सिंचाई, निराई–गुड़ाई व पौध संरक्षण का विशेष ध्यान रखें। फूलों को गिरनें से बचाने के लिए पलेनोंफिक्स 1 मिली को 5 लीटर पानी में मिलाकर पौधों पर छिड़काव करें।

मूली की बुवाई के लिए पूषा रश्मि या जापानीज

व्हाईट किस्म का प्रयोग करे। मूली की बुवाई मेंढ़ों पर करनी चाहिए। मेंढ़ से मेंढ़ की दूरी 30–40 सेमी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 8–10 सेमी रखें।

धनियॉं की बुवाई मध्य नवम्बर तक कर लेवे। खेत की तैयारी के समय 150 से 200 क्विंटल गोबर की खाद, 60 किलोग्राम नत्रजन, 30 किलोग्राम फॉस्फोरस तथा 20 किलोग्राम पोटास प्रति हैक्टेयर दर से प्रयेग करे। नत्रजन की एक तिहाई मात्रा तथा फॉस्फोरस एवं पोटास की पूरी मात्रा का प्रयोग बुवाई से पूर्व करें। उन्नत किस्म आर.सी. आर.–41 यू.डी.–20 है। बीज की मात्रा एक हैक्टेयर के लिए 15 से 20 किलोग्राम पर्याप्त है। बीज को बुवाई से पूर्व 2 ग्राम ऐग्रोसन जी.एन. या 3 ग्राम थायरम से प्रति किलोग्राम बीज को उपचारित करें। बीज को दो हिस्सों में विभाजित कर लेवें। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 40 से.मी. रखें व बीज को 3–4 से.मी. गहरा बोयें।

बैंगन की फसल में उपर्यक्त सिंचाई, निराई–गुड़ाई व पौध संरक्षण का विशेष ध्यान रखें।

पत्तीदार सब्जियों में पालक एवं मैथी की बुवाई करे। मेथी की किसम आर.एम.टी.–1 व कसूरी मैथी तथा पालक की जोबनेर ग्रीन किस्म का उपयोग करे। मैथी की बीज दर 20–25 किलोग्राम कस्तुरी मैथी 10–15 किलोग्राम तथा पालक की बीज दर 25–30 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर है। पंक्ति सें पंक्ति की दूरी 20 से.मी. रखें व बीज को 4–5 से.मी. गहरा बोयें।

लहसून की 5 क्विंटल कलिया प्रति हैक्टर दर से बोयें। 250 से 300 क्विंटल गोबर की खाद तथा 60 किलोग्राम नत्रजन, 40 किलोग्राम फॉस्फोरस व 100 किलोग्राम पोटाश प्रति हैक्टेयर की दर से खेत तैयारी के समय बुवाई से पूर्व मिलाये। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 20 से. मी. रखें व पौधे से पौधे की दूरी 7 से.मी. रखें। लाडवा व मलेवा किसम उत्तम है।

कीट विज्ञान:–चना, गेहूँ व जौ : दीमक की रोकथाम के लिए प्रति 100 किलोग्राम बीज को क्लोरोपाइरिफॉस 20 ई. सी. 450 मिली. एवं इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस एल 200 मिली. पॉच लीटर पानी में घोल बनाकर बीज को उपचारित करे। इसके बाद में बीज को छाया में सूखाकर बुवाई करें।

चना :–दीमक के प्रकोप की रोकथाम के लिए क्लोरपाइरीफोस 20 ई.सी. 600 मिली का 5 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति 100 किग्रा बीज के हिसाब से बीजोपचार करें। जिन क्षेत्रों में वायरवर्म का प्रकोप हो वहां बीजों को क्यूनालफोस 25 ई.सी. 10 मिली/किग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।

सरसों : अंकुरण के 7 से 10 दिन में आरा मक्खी व पेन्टेड बग अधिक नुकसान पहुँचाते है। इसकी रोकथाम हेतु मिथाइल पेराथियोन (2 प्रतिशत) या मेलाथियोन (5 प्रतिशत) 25 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से प्रातः या शाम बुरके अथवा मेलाथियान 50 ई.सी. 1250 मिली. या डाइमेथोएट 30 ई.सी. 1250 मिली. को पानी में मिलाकर एक हैक्टेयर में छिड़काव करें। आवश्यकता होने पर छिड़काव 10 से 15 दिन पर पुनः दोहरावे।

बेर : बेर के फल मटर के दाने के आकार के हो गये हो तो फेनवलरेट 20 ई.सी. 1 मिली./3 लीटर या डाईमिथोएट 30 ई.सी. 1 मिली./लीटर का घोल बनाकर छिड़काव करें। 21 दिन बाद में पुनः दोहराये फल मक्खी का प्रकोप कम हो जायेगा।

अनार :पत्ती मोड़क (बरुथी रोग) : माह नवम्बर में इसके प्रकोप से पत्तियॉं सिकुड़ कर मुड़ जाती है, जिससे पौधों की बढ़वार एवं फलन बूरी तरह से प्रभावित होता है। रोकथाम:प्रोफेनोफॉस 50 ई.सी. का 1 मिली/लीटर पानी का घोल बनाकर 15 दिन के अन्तराल में दो बार छिड़काव करें।

फूल गोभी व पत्ता गोभी : फूल गोभी व पत्ता गोभी पर हरी लट या तम्बाकू की सूंडी का प्रकोप होने पर मैलाथियान 50 ई.सी. 250 मिली. दवा या इमामेक्टिन बेन्जोएट 5 एस. जी. 50 ग्राम प्रति बीघा 100 – 150 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

मिर्च: हरि लट का प्रकोप होने पर क्यूनालफोस 25 ई.सी. 2. 0 मिली/लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

Printed and published by Dr. Deepali Dhawan on behalf of Nidesak Prasar Shiksha and Printed at M/s Kishan Enterprises, Magaram Colony, Outside Jassusar Gate, Bikaner and published at Swami Keshwanand Rajasthan Agricultural University, Bikaner, Editor : Prof. Rajesh Kumar Verma.